अपने आन्तरिक और बाह्य परिदृश्य को पुनर्नवीन करना

गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा सिखावनियाँ

इरादा करना, अटकल लगाना, आलोचनात्मक भाव रखना. . .

एक व्यक्ति अनेकानेक तरीक़ों से अपने बारे में, दूसरों के बारे में और आम तौर पर संसार के बारे में सोचता है। अनेकानेक तरीक़ों से वह खुद को अपने ही सीमित दृष्टिकोणों में बाँध लेता है।

तुमने कितनी ही बार अपने आपसे यह कहा होगा या दूसरों को यह कहते सुना होगा, "मेरा वैसा करने का *इरादा था* । पर फिर मैंने यह *अटकल लगाई* कि अमुक या तमुक वह कर लेगा।" ऐसा पूर्वानुमान करने के तुम्हारे कारण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, हो सकता है तुम सोचो कि तुम जो भी कार्य करने निकले हो, उसे करने के लिए कोई दूसरा तुमसे बेहतर, तुमसे अधिक प्रतिभावान, तुमसे अधिक अनुभवी होगा। तुम तुरन्त ही दूसरों की तुलना में खुद की आलोचना करने लगते हो, जैसे ही किसी दूसरे व्यक्ति से तुम्हारा सामना होता है, तुम खुद पर से अपने भरोसे को डगमगा जाने देते हो। तब तुम्हारी आलोचनाएँ, बड़ी आसानी से, उत्तरदायित्व को लेकर तुम्हारी टालमटोल को न्यायसंगत ठहरा सकती हैं। ये आलोचनाएँ, तुम्हारी गाड़ी को पटरी से उतार सकती हैं जिसके कारण तुम अपने अभीष्ट इरादों को पूरा न कर पाओ।

दूसरी तरफ़ है, आत्ममोह। एक बार फिर, तुम दूसरों के साथ अपनी तुलना करते हो, पर इस बार तुम्हें पूरा यक़ीन है कि तुम उनसे श्रेष्ठतर हो, कि तुम और केवल तुम ही किसी काम को सबसे बेहतरीन ढंग से कर सकते हो। असुरक्षा की भावना और आत्ममोह—एक ही सागर के विपरीत किनारे हैं। वे कभी मिल नहीं सकते; वे विलय होकर कोई भिन्न रूप नहीं ले सकते।

जब तुम्हारे दृष्टिकोण पर और आलोचनात्मक भाव पर रात-दिन कोई अंकुश नहीं रहता तो वे गति पकड़ लेते हैं। वे तुम्हारे मानस में आवश्यकता से अधिक बड़ा स्थान घेर लेते हैं और इतने भीमकाय बन जाते हैं कि जल्दी ही तुम्हारी ग़लत धारणाओं का प्रबल आवेग तुम्हारी पूरी सत्ता में व्याप्त हो जाता है। पलक झपकते ही तुम घोर पतन के रास्ते पर तेज़ी-से लुढ़कने लगते हो। फिर इस बात की थाह लेना कठिन हो जाता है कि वास्तव में हुआ क्या।

तो, अभी, इसी समय मैं चाहती हूँ कि तुम अपने आपसे पूछो : यह कहानी कब शुरू हुई थी? इस तरह से सोचने की प्रवृत्ति—इरादा करना, अटकल लगाना, एवं आलोचनात्मक भाव रखना—और फिर तदनुसार काम करना, भीतर बहुत गहराई में घुसी हो सकती है। वस्तुतः, इस प्रवृत्ति की जड़ें इतनी गहरी जमी हो सकती हैं कि परिवर्तन लाने की आवश्यकता का संकेत मात्र कड़े प्रतिरोध की भावना उत्पन्न करता है।

और यह "परिवर्तन" कुछ भी हो सकता है—यह आवश्यक नहीं है कि यह परिवर्तन तुम्हारी अभिवृत्ति, तुम्हारे व्यवहार, तुम्हारे व्यक्तित्व, तुम्हारी अभिरुचियों को लेकर हो। यह कोई सामान्य-सी बात हो सकती है जैसे कोई तुमसे किसी कार्य को एक अलग ढंग से करने के लिए कहे। या कोई निष्पक्षता से तुम्हारी कही गई बात में हुई किसी चूक को तुम्हारे सामने रखे। तथापि, मैंने बार-बार यह देखा है कि लोग ऐसी टिप्पणियों को अपने चरित्र पर लगाया गया आक्षेप मान लेते हैं—अपने मनुष्य होने की योग्यता पर लगाया गया आक्षेप मान लेते हैं। मानो वे वापस स्कूल में हों और जो भी टिप्पणी या सुझाव उन्हें मिलता है, वह परीक्षा में उनकी उत्तर-पुस्तिका पर अध्यापक की क़लम से खींची गई लाल रेखा हो, उस उत्तर-पुस्तिका पर जिसमें उन्होंने बड़ी सावधानी से उत्तर लिखे थे। अज्ञानता। *अज्ञानता* के समानार्थी शब्द बड़े सारगर्भित हैं।

भारत के ऋषि-मुनियों ने बड़े सरल रूप से इसे समझाया है : अज्ञान अन्धकार है। इस कारण, अपनी एक प्रार्थना में वे कहते हैं :

> तमसो मा ज्योतिर्गमय।
>
> मुझे अज्ञान के अन्धकार से,
> आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश की ओर ले चलिए।

मैंने बाबा मुक्तानन्द को सुना है सैकड़ों सत्संगों में एक कहानी सुनाते हुए। यह कहानी है एक कोढ़ी की जो सोने की खान के ऊपर रहा करता था। उस कोढ़ी ने अपने जीवन के कई वर्ष एक-एक दाने के लिए भीख माँगने में बिता दिए—जबकि पूरे समय, वह इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ था कि वह एक कल्पनातीत कोष पर बैठा हुआ है। क्या तुम्हारे साथ भी ऐसा ही नहीं है? क्या यह एक हैरतअंगेज़ बात नहीं है कि कैसे एक व्यक्ति जीवन भर इस बात से अनभिज्ञ रह सकता है कि उसके अपने भीतर अत्यधिक मूल्यवान सोने की खान है और उसके मन में कभी यह विचार तक नहीं आता कि वह उस अथाह साधुता को अपने संसार के साथ बाँटे? ऐसा कैसे है कि मानव, जिसे सम्भवतः बुद्धिमान प्रजाति माना जाता है, उसे पकड़कर रखने का इतना हठ करता है जिसे वह सही समझता है? कितनी ही बार

ऐसा होता है कि बजाय इसके कि संसार के पास देने के लिए जो है, उसके प्रति तुम सचमुच ग्रहणशील रहो और आगे कैसे बढ़ना है यह तय करने हेतु अपने विवेक का इस्तेमाल करो, तुम यह चुनाव करते हो कि तुम इस बात को *स्वीकार* ही नहीं करोगे कि कोई दूसरा दृष्टिकोण है भी। इसी प्रकार, तुम भगवत्प्रकाश की ओर उन्मुख होने से मना कर देते हो और तुम्हारे लिए जो भविष्य सँजोकर रखा गया है, उससे विस्मयाभिभूत हो जाने के सुअवसर से तुम खुद को वंचित रखते हो।

एक बार फिर, अपने आपसे पूछो : यह कहानी कब शुरू हुई थी? और अपने सोचने के ढंग में दिन-प्रतिदिन छोटे-छोटे परिवर्तन लाना—बिलकुल ही नन्हे-नन्हे सुधार लाना—इतना असुविधाजनक, अप्रिय और खिजाने वाला क्यों है?

ये प्रश्न विचारणीय हैं। तो, प्रयत्न करो, मन के अन्धकार से बाहर निकलकर हृदय के प्रकाश में प्रवेश करने का भरसक उद्यम करो। इस विषय में तुम्हारा प्रयत्न है, भक्ति-साधना। यह भक्तियोग है जिसे समझाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने 'भगवद्गीता' में एक पूरा अध्याय समर्पित किया है। इसके लिए आवश्यकता है, श्रद्धा, दृढ़ता, एकाग्रचित्तता और अनुशासन की। साथ ही साथ, इस प्रयत्न में सौम्यता है—एक मधुरता है। हाँ, भक्ति एक मधुर प्रयत्न है।

भारतीय शास्त्रों में भगवान श्रीकृष्ण की एक कहानी है जिसमें वे देवर्षि नारद को अपने विवाह में वीणा बजाने के लिए आमन्त्रित करते हैं। नारद जी एक प्रवीण संगीतकार हैं और वे अपने आपको भगवान का सर्वाधिक निष्ठावान सेवक मानते हैं। वे बड़ी प्रसन्नता से भगवान का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं, तथापि यह जानकर वे शीघ्र ही बड़े हत्प्रभ रह जाते हैं कि विवाह एक छोटे-से गाँव में, उन लोगों के बीच हो रहा है जो बड़े सीधे-सादे-से दिखाई देते हैं।

इस बात का आभास होने पर कि नारद जी का यह मानना है कि उनका संगीत ऐसे दर्शकों की समझ से परे है, भगवान एक ग्रामीण से वीणा बजाने को कहते हैं। नारद जी को संशय है; उस व्यक्ति का वीणा-वादन कैसा होगा इस विषय में उनके अन्दर तुरन्त एक आलोचनात्मक भाव उठता है। तथापि, उस व्यक्ति का वीणा-वादन और उसका गायन ऐसा भक्तिपूर्ण होता है कि सभी मन्त्रमुग्ध रह जाते हैं। वास्तव में, उस व्यक्ति का गायन उस शिला को ही पिघला देता है जिस पर वह बैठा था! बाद में, जब नारद जी गाते हैं तो उनके गायन का प्रभाव वैसा नहीं होता जैसा उस ग्रामीण के गायन का हुआ था। अन्त में, नारद जी को यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि दूसरों में उनसे अधिक भक्ति हो सकती है और उन्हें यह भी मानना पड़ता है कि अपनी भक्ति को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए उन्हें अभी और प्रयत्न करना होगा।

देवर्षि नारद की भाँति, तुम भी अलग तरीक़े से सोचने और कार्य करने के लिए तत्पर हो सकते हो। ऐसा करने पर तुम पाओगे कि तुम्हारी सम्पूर्ण सत्ता एक सुन्दर नवीन ऊर्जा से जगमगा रही है। तुम अपने आपको नया-नया महसूस करोगे। सहज ही तुम कह उठोगे :

> "मैं अपने घर पहुँच गया हूँ। मैं ताज़गी से भर गया हूँ। मैं अपने जीवन में सूर्योदय का स्वागत करने के लिए सज्ज हूँ। मैं जो हूँ वह इसलिए हूँ क्योंकि आत्मज्ञान मेरे अन्दर जाग्रत हो रहा है। अपनी साधना करने के मेरे समस्त प्रयत्न अब प्रयत्नहीनता की आभा से दमकेंगे क्योंकि मैं जानता हूँ कि कृपा मेरी सहचरी है।"

~ गुरुमाई चिद्विलासानन्द

© २०२४ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

इस सिखावनी में सन्दर्भित कहानियों को पढ़ने के लिए, अंग्रेज़ी की सिखावनी के नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें।

प्रयत्नहीन प्रयत्न के विषय में श्रीगुरुमाई के शब्द पढ़ने के लिए अंग्रेज़ी की इस सिखावनी के नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें।